वर्ष :4 अंक :2 अप्रैल-जून 2014 मूल्य : 25 रुपये

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

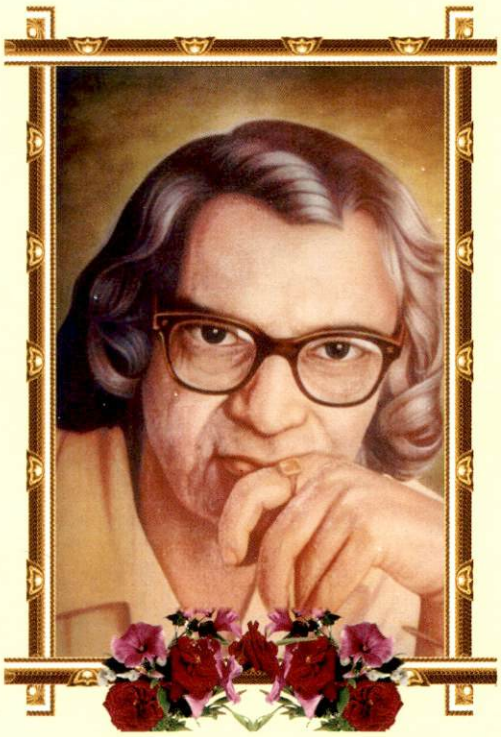

सुमित्रानंदन पंत

(जन्म : 20 मई, 1900; निधन : 28 दिसम्बर, 1977)

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को!
तज कर तरल तरंगों को,
इन्द्रधनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू भ्रंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग सा मन?
भूल अभी से इस जग को!
कोयल का वह कोमल बोल,
मधुकर की वाणी अनमोल,
कह तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भर लूँ, सजनि, श्रवण?
भूल अभी से इस जग को!
ऊषा–सस्मित किसलय–दल,
सुधा–रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन?
भूल अभी से इस जग को!

– सुमित्रानंदन पंत

वर्ष : 4, समग्रांक : 13, अप्रैल–जून, 2014 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप
डॉ. सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो. : 9910912530

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा
पारस–बेला न्यास के लिए
डा॰ एल॰ पी॰ पाण्डेय द्वारा प्रकाश पैकेजर्स,
257, गोलागंज, लखनऊ तथा आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इन्ड. एरिया, नई दिल्ली से मुद्रित
एवं ए–1/15 रश्मिखण्ड, शारदा नगर योजना,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
कहाँ नहीं तुम बाबू जी!	डा॰ अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
जो मैं भी कवि हो जाता	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5–6
मानव	सुमित्रानंदन पंत	7
इतना भी क्या कम है प्यारे	नागार्जुन	8–9
तुमको क्या जादू आता है ?	आचार्य विष्णु कान्त शास्त्री	10
समय के सारथी		
खेलता हुआ आदमी	लीलाधर मंडलोई	11
स्त्री की तीर्थ–यात्रा	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	12
हिंदोस्ताँ कहाँ है अब हिंदोस्तान में	उदय प्रताप सिंह	13
ग़ज़लों में जी रहा हूँ	पं॰ सुरेश नीरव	14
थोड़ा सा विश्राम	बी. एल. गौड़	15
आम, गर्मी, भ्रष्टाचार	राकेश पाण्डेय	16
बिटिया बड़ी हो रही है	उमेश चौहान	17
सत्ता का संग्राम	ब्रजराज सिंह तोमर	18
वो	'सर्वेश' चन्दौसवी	19
'सर्वेश' चन्दौसवी से साक्षात्कार		20–21
धमाल हुआ होली में	महेन्द्र शर्मा	22
न कहना, कभी अलविदा	विजय सिंह 'विजय'	23
चुलबुले दोहे	डॉ॰ सुनील जोगी	24
नारी–स्वर		
गंगापुत्र	रेखा सिंह	25
उतरी गंगा स्वर्ग से	कल्पना रामानी	26
सबसे अमीर लड़की	नीलम मैदीरत्ता 'गुँचा'	27
21वीं सदी के रिश्ते	अंजु (अनु) चौधरी	28
जैसे मुझमें जान नहीं है	विजयलक्ष्मी	29
मेरे बाबू जी!	शुभदा बाजपेयी	30
नवोदित रचनाकार		
हे मेरे चितवन के चकोर	राजेश कुमार दुबे	31
धरा का आधार	राजेन्द्र कुमार सिंह 'कुमार'	32
चिराग उसकी यादों का	डॉ॰ विश्वदीपक बमोला	33
बिटिया	संजय वर्मा	34
सोचकर इतना बता	बृजकिशोर सिंह 'बिहारी'	35
आलाप		
गधे 'गधे' क्यों ?	राजेन्द्र त्यागी	36–38
साहित्यिक हलचल	ज्ञानेश्वरी 'सखी' सिंह	39
अंत में		
गुलों में रंग जो न थे...	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संपादकीय

गोपाल दास नीरज लिखते हैं :–

आत्मा के सौन्दर्य का, शब्द रूप है काव्य
मानव होना भाग्य है, कवि होना सौभाग्य

मित्रों , ये पंक्तियाँ सामान्य पंक्तियाँ नहीं हैं। ये असाधारण पंक्तियाँ हैं। मनुष्य योनि में जन्म अच्छे कर्मों के परिणाम स्वरूप नहीं होता। यह ईश्वर की अहेतुक कृपा से होता है। अहेतुक कृपा का तात्पर्य है वह कृपा जिसका कोई हेतु अर्थात कारण न हो। हमारा भाग्य था कि हम मनुष्य योनि में पैदा हो गये। यदि कोई शेर अगले जन्म में मनुष्य हो जाये तो इसका तात्पर्य यह नहीं हैं कि उसने जंगल में बतौर शेर बड़े सत्कर्म किये थे, हिंसा नहीं की जीवों की हत्या नहीं की, तृण–घास या कंद–मूल–फल खाकर जीवनयापन किया... तब उसे अगले जन्म में मनुष्य योनि प्राप्त हुई! ऐसा कुछ नहीं है। यदि कोई सिंह या शेर या कोई अन्य प्राणी अगले जन्म में मनुष्य बनता है तो अपने सत्कर्मों के कारण नहीं अपितु ईश्वर की अहेतुक कृपा के कारण बनता है। मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी योनि में सत्कर्म या दुष्कर्म का विधान नहीं है। केवल कर्म है। लेकिन मनुष्य योनि में किये गये कर्मों को सत्कर्मों और दुष्कर्मों में विभक्त करने का ईश्वरीय विधान है और तद्नुरूप आगे का फल है। ऐसा कहा जाता है कि कविता मनुष्यता की मातृभाषा होती है। कविता का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति मानवता का द्योतक है। इसीलिए कहा गया है कि कवि होना सौभाग्य की बात है। सौभाग्य की बात इसलिए कि उसमें मनुष्यता के गुण जन्मजात हैं। उसका हृदय निष्कलुष होता है। मन ग्रंथिमुक्त होता है। पूर्वजन्म में मनुष्य योनि में जन्में व्यक्ति के सत्कर्मों के कारण और ईश्वर की असीम अनुकम्पा के कारण कोई व्यक्ति कवि बनता है। प्लेटो ने भी कभी इस विचार का प्रतिपादन किया था कि कवि में दैवीय गुण होते हैं। प्लेटो ने यह भी कहा था कि शासक के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति–कवि–दार्शनिक (Poet Philospher) होता है।

आज के हमारे जो कवि मित्र और कवियित्रियाँ कविता लेखन कर रही हैं उनके संज्ञान में यह बात लाना इसलिए आवश्यक है कि कवि समाज का सर्वाधिक प्रबुध और जागरूक नागरिक होता है। उसका अपना आचरण और उसके द्वारा कही गई बातें समाज के लिए ही नहीं अपितु आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा स्रोत होती हैं। इसलिए कवि और लेखक को इस समाज का सर्वाधिक उत्तरदायी व्यक्ति होना चाहिए। कविता, सिर्फ शब्दों और भावों का खेल नहीं है। कविता में एक दृष्टि और दिशा भी होनी चाहिए। हमारे द्वारा लिखे गये शब्दों के तात्कालिक और दूरगामी परिणाम क्या हो सकते हैं, हमें सदैव इस बात का बोध रहना चाहिए। सच लिखना कवियों का जन्मसिद्ध अधिकार है लेकिन जिम्मेदारी के साथ लिखना कवियों की महानता का द्योतक है। जो जितनी जिम्मेदारी से लिख रहा है वह उतना ही बड़ा कवि है।

हमें यह बात यहां इसलिए कहनी पड़ रही है क्योंकि आजकल कविगण, विशेषकर मंच पर पाठ करने वाले कविगण अपने कुछ तात्कालिक लाभ और हितों को ध्यान में रखकर ऐसा लेखन कर रहे हैं जिससे ऐसा लगता है कि पूरा तंत्र भ्रष्ट और निकृष्ट है, नेता, अधिकारी, संत, पुजारी... सब हैं इस देश की बीमारी... कुछ इस अंदाज में लिखा जा रहा है कि जैसे यहाँ कुछ भी ठीक नहीं है। ...और यह क्यों लिखा जा रहा है? मंच पर खड़े होकर ऐसा बोलने से वाह–वाही मिलती है... तालियाँ बजती हैं... प्रखर कवि के रूप में पहचान बनती है, और कवि का 'भाव' बढ़ जाता है। अपना 'भाव' बढ़ाने के लिए पूरे समाज को कलुषित करना और कटघरे में खड़ा करना? आप सोचे–क्या ये लोग वास्तव में कवि कहे जाने लायक हैं? कदापि नहीं। कवियों के वेश में ये कौन फूहड़ और गैर–जिम्मेदार लोग हैं जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समाज विरोधी कार्यों में लगे हुए हैं। इन्हें पहचानिये और इन्हें अलग कीजिए। इन स्वार्थ लोलुपों को कवि के रूप में अपने बीच मत आने दीजिये।

मित्रों पारस–परस पत्रिका अच्छे लेखन को प्रकाशित और प्रचारित करती है। पारस–परस में प्रकाशित कविताओं के उच्च स्तर को देखते हुए कई समाचारपत्र और पत्रिकाएं इन कविताओं को अपने यहाँ पुन: प्रकाशित कर रहें हैं। हम उनका धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने पारस–परस पत्रिका को यह गौरव प्रदान किया।

इसी के साथ मैं अपने उन तमाम वरिष्ठ कवियों/कवियित्रियों और नवोदित रचनाकारों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी रचनाएं पारस–परस के इस अंक में प्रकाशित हुई हैं।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

माननीय संपादक महोदय,

सबसे पहले तो मैं आपका आभार व्यक्त करना चाहता हूँ कि आपने पारस–परस के जनवरी–मार्च 2014 के अंक में कविताओं के अतिरिक्त कुँअर बेचैन का साक्षत्कार भी प्रकाशित किया। कविताओं के अलावा आपने कुछ तो और छापा। मेहरबानी करके आप इसमें कहानी, लेख, व्यंग्यलेख संस्करण और कुछ हल्का फुल्का मन को गुदगुदाने वाला साहित्य भी प्रकाशित करें ताकि पारस–परस पत्रिका को पढ़ने वालों की संख्या बढ़ सके। वैसे भी जब से फेसबुक प्रचलन में आया है, कवियों की तो जैसे बाढ़ आ गई है। किसी को शब्द ज्ञान हो न हो, सुर ज्ञान हो न हो पर, हर कोई फेसबुक पर कवि बन गया है। आप इन बेकार के कवियों को छापना बंद करें और कुछ सार्थक और उद्देश्यपूर्ण लेखन करने वाले साहित्यकारों को छापें तो इससे समाज और साहित्य का भला होगा।

विजय सिंह 'मलिक'
मेरठ, उत्तर प्रेदश

आदरणीय महोदय,

पारस–परस का जनवरी–मार्च 2014 का अंक पढ़ा। सदैव की भांति आप ने पत्रिका में इस बार भी अच्छी रचनाओं का चयन किया है। पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की कविता 'मैं तुमको प्यार किया करता हूँ' बहुत अच्छी लगी। कविता की ये पंक्तियाँ तो अमर पंक्तियाँ हैं–

जीने के साथ–साथ ही अब/मरने का अभ्यास किया करता हूँ। मैं तुमको प्यार करता हूँ। ''मैं देखती हूँ कि पारस–परस के प्रत्येक अंक में इनकी रचना प्रकाशित होती है। इसीलिए अब मेरी 'प्रसून' जी के बारे में और अधिक जानने की जिज्ञासा है। क्या इनका कोई कविता संग्रह या कोई प्रकाशित कृति है और उसकी प्रति मुझे मिल सकती हैं। इसके साथ ही कैलाश गौतम की कविता 'व्यवस्था' बहुत ही अच्छी। यदि संभव हो तो अगले अंक में इनकी कचहरी पर लिखी गई कविता अवश्य प्रकाशित करें। धन्यवाद।

श्रुति चौधरी 'निर्मला'
उज्जैन, मध्यप्रदेश

रचनाकार अपनी रचनाएं और प्रतिक्रियाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

e-mail
paarasparas.lucknow@gmail.com
shivkumarbilgrami99@gmail.com

कहाँ नहीं तुम बाबू जी!

—डा॰ अनिल कुमार पाठक

जल में, थल में, नील गगन में,
चहुँदिशि सुरभित मलय पवन में।
सूर्य–रश्मि औ' चन्द्र किरन में,
दुख में, सुख में, प्रमुदित मन में,
व्याप्त वहीं तुम बाबू जी।
कहाँ नहीं तुम बाबू जी।।

हरित धान्य स्वर्णिम बाली में,
क्षुधित कृषक, सूनी थाली में,
कोयल, कूक, पुष्प, डाली में,
हर उपवन, उसके माली में।
आप्त वहीं तुम बाबू जी।
कहाँ नहीं तुम बाबू जी।।

षड्ऋतुओं में औ' हर पल में,
मरू में, गिरि में, हिम, थल–जल में,
जड़–चेतन, चल और अचल में,
कल में, आज और फिर कल में,
सदा कांत तुम बाबू जी।
कहाँ नहीं तुम बाबू जी।।

तितली की सुन्दर पाँखों में,
विलसित–सूखी हर शाखों में।
चिता से उड़ती, तचती राखों में,
माँ की अश्रुभरी आँखों में।
अटल, शान्त तुम बाबू जी,
कहाँ नहीं तुम बाबू जी।।

तुम्ही सत्य, शिव औ' सुन्दर हो,
तुम अनादि, शाश्वत, अक्षर हो।
अमृतमय करुणासागर हो,
सारे प्रश्नों के उत्तर हो।
बसे हृदय में बाबू जी,
कहाँ नहीं तुम बाबू जी।।

❖❖❖

जो मैं भी कवि हो जाता

–पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

जो मैं भी कवि हो जाता।

सन्ध्या की अलसित आँखों में,
और कुसुम की मधु पाँखों में,
छोड़ जगत की चहल–पहल को,
व्यर्थ न मन को मैं भरमाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

कभी सितारों से मिलकर मैं,
कभी तरंगों में तिरकर मैं,
इस जगती से दूर हटाकर,
कभी न अपना मन बहलाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

जगती से दूर गई मानवता,
तब मन मेरा सोचा करता,
मैं देवों का अर्चन करता,
या मानवता को गीत–सुनाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

अनुभव रहित कल्पना कोरी,
प्रणय बूँद की करके चोरी,
आहत हृदय, विकंपित उर की,
क्या मैं इनसे प्यास बुझाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

....जारी

रूप–रश्मि की मधु ज्वाला में,
और अधर कंपित हाला में,
एक बूँद सरिता के जल का,
कभी न मैं उपहास कराता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

अलस अधर पुलकित चितवन में
विरस वदन–विकसित आनन में
कंज संकोच जहाँ गड़ जाते,
भाव वहाँ कैसे पहुँचाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

तंद्रिल पलक नयन सित अलसित,
भ्रमर सदृश पुत्तलि चिर सस्मित
मैं देख कहाँ सकता इनको,
मैं तो जग से ही शरमाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

किसी किशोरी के नयनों में,
और अधर के मधु–चुम्बन में,
कभी न यौवन हाला पी मैं
प्यासे अधरों का मोल चुकाता।

जो मैं भी कवि हो जाता।।

❖❖❖

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई 1900 को अल्मोड़ा जिला के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। सुमित्रानंदन पंत हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक हैं। यह अपने अनूठे प्रकृति चित्रण के लिए विख्यात हैं। इन्होंने ग्रन्थि, गुंजन, ग्राम्या, युगांत, स्वर्ण किरण, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन चिदम्बरा, सत्यकाम जैसी अमर कृतियों की रचना की हैं। इन्हें इनके कृतित्त्व के लिए पद्मभूषण, ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी तथा साहित्य अकादमी सावियत लैंड नेहरू पुरस्कार जैसे सम्मानों से अलंकृत किया गया है। इनका निधन 28 दिसम्बर, 1977 को हुआ।

मानव

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरूपम!
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौन्दर्य प्ररोह अंग,
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति,
छाया–प्रकाश के रूप–रंग!

धावित कुश नील शिराओं में
मदिरा से मादक रूधिर धार,
आंखें हैं दो लावण्य लोक,
स्वर में निसर्ग संगीत सार!
पृथु उर, उरोज, ज्यों सर, सरोज,
दृढ़ बाहु प्रलम्ब प्रेम बन्धन,
पीनोरूस्कन्ध जीवन तरू के,
कर, पद, अंगुलि, नख–शिख शोभन!

यौवन की मांसल, स्वस्थ गन्ध,
नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग!
आह्लाद अखिल, सौन्दर्य अखिल,
औ' प्रथम प्रेम का मधुर स्वर्ग!

आशाभिलाष, उच्चाकांक्षा,
उद्यम अजस्र, विघ्नों पर जय,
विश्वास, असद्सत का विवेक,
दृढ़ श्रद्धा, सत्य प्रेम अक्षय!
मानसी भूतियाँ ये अमन्द,
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,
जो स्तम्भ सभ्यता के पार्थिव,
संस्कृति स्वर्गीय,–स्वभाव–पूर्ति!

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब में प्रकाश!
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें,
उपभोग करो प्रतिक्षण नव–नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव!

❖❖❖

जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगा कर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे–धीरे
–रामदरश मिश्र

नागार्जुन

नागार्जुन का वास्वविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था। इनका जन्म 30 जून 1911 को बिहार के मधुबनी जिला के सतलखा गाँव में हुआ था। नागार्जुन हिन्दी और मैथिली के अप्रतिम कवि माने जाते हैं। इन्होंने कविता के अतिरिक्त उपन्यास, व्यंग्य, निबंध संग्रह, बाल साहित्य जैसे विविध साहित्य की रचना की है। इन्हें इनके कृतित्त्व के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से अलंकृत किया गया । इनका निधन 5 नवम्बर, 1998 को हुआ।

इतना भी क्या कम है प्यारे

लाशों को झकझोर रहे हैं
मुर्दों की मालिश करते हैं
...ये भी उन्हें वोट डालेंगी!
मतपत्रों की आँख मिचोली
सबको ही अच्छी लगती है
फिर भी सच है
किस्मत उनकी ही जगती है
जैसे–तैसे जीतेंगे जो

जैसे–तैसे ज्यादा–ज्यादा मतपत्रों को
खीचेंगे जो, जीतेंगे वो
हाँ, हाँ, वो ही जीतेंगे
जी हाँ, वो ही जीतेंगे!
लाशें भी खुश–खुश दीखेंगी
मुर्दे भी खुश–खुश दीखेंगे
उनकी ही सरकार बनेगी

श्रमिक जनों का खेतिहरों का
छात्र वर्ग का, लिपिक वर्ग का
गिरिजन का भी, हरिजन का भी
आम जनों का
लहू चूसने की तरकीबें
नई–नई ईजाद करेंगी
निर्मम होकर कतल करेगी
जो भी चूँ बोलेगा, उसका

जो भी अब सरकार बनेगी
सेठों को ही सुख पहुँचाएगी
पाँच साल फिर मौज करेंगे
लोकसभाई–लोकसभाई–लोकसभाई
सांसद–फांसद, एम.एल.ए गण, एम.एल.ए गण
पाँच साल फिर मौज करेंगे

यूँ ही सब भत्ता मारेंगे
नौकरशाही की छाया में
सुविधाभोगी बौद्धिक जनों की
उसको ही आशीष मिलेगी
धर्म–धुरंधर पंडित–मुल्ला
तिकड़मजीवी ग्रंथकीट विद्या–व्यवसाई
कवि–साहित्यिक, पत्रकार,
तकनीक–विशारद
सबकी ही आशीष मिलेगी
नवसत्ता, अभिनव सत्ता की
सबकी ही आशीष बटोरेगी
फिर से सरकार...
मुझ–जैसे पागल दस–पाँच
उस सत्ता को पहुँचाएँगे क्या
रत्ती–भर भी आँच?
मुझ–जैसे पागल दस–पाँच
कैसे भी सरकार बने तो
उसका हम क्या कर लेगें?
क्या कर लेंगे, हाँ जी, उसका!
कुत्तों जैसे भौंक भौंककर–
उसकी नींद हराम करेंगे?
हाँ जी, हाँ जी, हाँ जी, हाँ जी!
इतना तो कर ही सकते हैं...
इतना तो कर ही सकते हैं...
यह भी तो काफी है प्यारे
इतना भी तो काफी है प्यारे
इतना भी क्या कम है प्यारे?

मत–पत्रों की लीला देखो
भाषण के बेसन घुलते हैं

.....जारी

प्यारे, इसका पापड़ देखो
प्यारे, इसका चीला देखो
चक्खो, चक्खो पापड़ चक्खो
गाली–गुफ्ता झापड़ चक्खो
मत–पत्रों की लीला चक्खो
भाषण के बेसन की, प्यारे, चीला चक्खो...
लाशों को झकझोर रहे हैं
मुर्दों की मालिश करते हैं
निर्वाचन के जादूगर हैं
राजनीति के मायाधर हैं
इनकी जय–जयकार मनाओ
इनकी ही सरकार बनाओ
पीछे देखा जाएगा जी
आएगा जो, आएगा जी
भुगतें वैसी, करनी इनकी होगी जैसी
नहीं, नहीं सो क्योंकर होगा?
नहीं, नहीं, सो क्योंकर होगा?
नहीं, नहीं, सो क्योंकर होगा?

फिर क्या होगा!
फिर क्या होगा!
फिर क्या होगा!

❖❖❖

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित / मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार / कॉपीराइट धारक से लिखित / मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक / अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **पारस–बेला न्यास** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। **इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।**

आचार्य विष्णु कान्त शास्त्री

आचार्य विष्णु कान्त शास्त्री का जन्म 2 मई, 1929 को कलकत्ता में हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. करने के पश्चात आप वहीं पर हिन्दी प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हो गये। 41 वर्ष की आयु तक शिक्षण करने के बाद सरकारी सेवा से सेवानिवृत्ति ले ली और राजनीति में प्रवेश किया। आप पश्चिम बंगाल विधान सभा तथा राज्य सभा के सदस्य रहे। बाद में में आपको हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया गया।

आपने साहित्यकार के रूप में भी बड़ा काम किया है। आपकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए आपको कई सम्मान दिये गये हैं। इन सम्मानों में प्रमुख हैं साहित्य भूषण सम्मान, डा॰ राम मनोहर लोहिया सम्मान तथा राजर्षि टंडन हिन्दी सेवी सम्मान। आपका निधन 17 अप्रैल, 2005 को हुआ।

तुमको क्या जादू आता है?

यह तुमने क्या किया कि सहसा
प्राणों में तूफान आ गया।
यह तुमने क्या दिया जिसे पा
गरल–सुधा मधु–दान पा गया।।
मेरा मन मुझको, दुनिया को
भूल–भूल कैसे जाता है।
तुमको क्या जादू आता है?

मेरा कण–कण, मेरा क्षण–क्षण
अब मेरा अपना न रहा प्रिय !
समा गये हो ज्यों तुम मुझमें
अब सपना, सपना न रहा प्रिय!
आँखों में आँसू भर आते
किन्तु हृदय बेसुध गाता है।
तुमको क्या जादू आता है?

क्या पाया, क्या खोया मैंने
यह हिसाब मैं कर न सकूँगा।
मिट्टी के टुकड़ों की खातिर
तुम्हें तुला पर धर न सकूँगा।
जीते जग के सफल हिसाबी,
मुझे हारना ही भाता है।
तुमको क्या जादू आता है?

❖❖❖

खेलता हुआ आदमी

– लीलाधर मंडलोई

एक तिलिस्म है जिसमें पांव रखते ही
धरे रह जाते हैं कानून–कायदे
सिकुड़ने लगता है वह अजब डर में

घूरता यत्नपूर्वक चीजों को
भर उठता ठिठक से जरूरतों के लिए
जेब में पड़ा अकेला सूरज
डूबता अवमूल्यित
इतना अंधेरा बाहर
कि खरीद ले अधिक बरामद की शैली

इतनी कामयाब रपट
कि मुख्यमंत्री दबिश के अभिनय में
गायब होता वो सब धड़ल्ले से
गुजारा दूभर कि लोग आदत गुलाम

पत्नी से कैफियत मुमकिन
बच्चों के सामने झूठ बोलते गिरफ्तार
पिता होने का ऐसा अनुभव
कि झुकतीं शर्म की जगह आंखें लाचारी में

रोज करता ईजाद बहाने
जागते हुए नींद का कुशल अभिनय
प्रतिवाद की कारगर शैली और
खबरों का इतना सटीक विश्लेषण
कि भर उठता स्वयं आश्चर्य से
बोलना अपने आपसे मिला विरासत में
कि इस आदत की कमजोरी ऐसी
पकड़ा जाता बोलते हुए नींद में
ढूंढों होगा वह कहीं आत्मा में
रूपए का दस सेर
और खुशबू होगी कहीं चेतना में
मिठास होगी बची जुबान पर
और हां, वो सब स्वाद
भागते हो जिनके पीछे पागलों से
बड़बड़ाता पारंपरिक दार्शनिक वाक्य
या देता दिलासा अपने आपको
धोखा है चीजों का मायावी संसार

अकलदाढ़ उगती है लम्बे अवकाश में
जागती प्रतिकूलताओं में अपनों के विरूद्ध
कि आदमी की आत्मा करती है पैरवी
कि आदमी का संदेह जागता है बाजार में
कि आदमी कोसता है राजा को सरेआम
अपने गढ़े विश्वासों से खेलता है जिद में
और सामने वाली की अंगुली उठते ही
आउट हो जाता है आदमी

❖❖❖

मैं भी दरिया हूँ मगर सागर मेरी मंज़िल नहीं
मैं भी सागर हो गया तो मेरा क्या रह जाएगा
–राजगोपाल सिंह

स्त्री की तीर्थ–यात्रा

– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

सवेरे सवेरे
उसने बर्तन साफ किए
घर–भर के जूठे बर्तन
झाड़ू–पोंछे के बाद
बेटियों को सँवार कर
स्कूल रवाना किया
सबके लिए बनाई चाय

जब वह छोटा बच्चा जोर–जोर रोने लगा
वह बीच में उठी पूजा छोड़कर
उसका सू–सू साफ किया

दोपहर भोजन के आखिरी दौर में
आ गए एक मेहमान
दाल में पानी मिला कर
किया उसने अतिथि–सत्कार
और बैठ गई चटनी के साथ
बची हुई रोटी लेकर

क्षण–भर चाहती थी वह आराम
कि आ गईं बेटियाँ स्कूल से मुरझाई हुईं
उनके टंट–घंट में जुटी
फिर जुटी संझा की रसोई में

रात में सबके बाद खाने बैठी
अबकी रोटी के साथ थी सब्जी भी
जिसे पति ने अपनी रुचि से ख़रीदा था

बिस्तर पर गिरने से पहले
वह अकेले में थोड़ी देर रोई
अपने स्वर्गीय बाबा की याद में

फिर पति की बाँहों में
सोचते–सोचते बेटियों के ब्याह के बारे में
गायब हो गई सपनों की दुनिया में
और नींद में ही पूरी कर ली उसने
सभी तीर्थों की यात्रा ।

❖❖❖

हिंदोस्ताँ कहाँ है अब हिंदोस्तान में

– उदय प्रताप सिंह

ये रोज कोई पूछता है मेरे कान में
हिंदोस्ताँ कहाँ है अब हिंदोस्तान में

इन बादलों की आँख में पानी नहीं रहा
तन बेचती है भूख एक मुट्ठी धान में

तस्वीर के लिये भी कोई रूप चाहिये
ये आईना अभिशाप है सूने मकान में

जनतंत्र में जोंकों की कोई आस्था नहीं
क्या फायदा संशोधनों से संविधान में

मानो न मानो तुम 'उदय' लक्षण सुबह के हैं
चमकीला तारा कोई नहीं आसमान में

(2)

न मेरा है न तेरा है ये हिन्दुस्तान सबका है
नहीं समझी गई ये बात तो नुकसान सबका है

हजारों रास्ते खोजे गए उस तक पहुँचने के
मगर पहुँचे हुए ये कह गए भगवान सबका है

जो इसमें मिल गईं नदियाँ वे दिखलाई नहीं देतीं
महासागर बनाने में मगर एहसान सबका है

अनेकों रंग, खुशबू, नस्ल के फल–फूल पौधे हैं
मगर उपवन की इज्जत–आबरू ईमान सबका है

हकीक़त आदमी की और झटका एक धरती का
जो लावारिस पड़ी है धूल में सामान सबका है

जरा से प्यार को खुशियों की हर झोली तरसती है
मुकद्दर अपना–अपना है, मगर अरमान सबका है

उदय झूठी कहानी है सभी राजा और रानी की
जिसे हम वक़्त कहते हैं वही सुल्तान सबका है

❖❖❖

ग़ज़लों में जी रहा हूँ

– पं॰ सुरेश नीरव

ग़ज़लों में जी रहा हूं तुझे जोड़–जोड़कर
लफ्ज़ों में आंसुओं की जगह छोड़–छोड़कर

गुमनाम–सी ये मौत गंवारा नहीं मुझे
आया हूं साजिशों के किले तोड़–तोड़कर

सोचा ही था कि तुझ पे मैं कोई गज़ल कहूं
अल्फाज़ आ रहे हैं हाथ जोड़–जोड़कर

एहसास में हैं सिलवटें माथे पे है शिकन
निकले हैं ख्वाब नींद को यूं तोड़–तोड़कर

महके हुए ख़ुतूत हैं मेरे दिमाग में
अहसास में जो हमने रखे मोड़–मोड़कर

रो–रो के हमने रात को माला बना ही ली
अश्कों के मोतियों की लड़ी जोड़–जोड़कर।

(2)
भारत बदल रहा है

हर दिल में काला साया डर का टहल रहा है
अब हादसों के दम पर भारत बदल रहा है

बेकार ही गए वो मारे थे जितने छापे
चोरों के घर से नेता हंसकर निकल रहा है

अपनी तो अर्ज़ी फिर से ख़ारिज़ हुई है लेकिन
नीचे से टेबिलों के सब काम चल रहा है

वो आंकड़े बढ़त के दुनिया को हैं बताते
लेकिन बजट में घाटा हरदम डबल रहा है

कूड़े में बीनते हैं वो सपने जिंदगी के
भाषण की टॉफियों से बचपन बहल रहा है

राघव हो या नारायण ये शब्द हैं भजन के
कलयुग में इनका मतलब उलटा निकल रहा है

खोई हुई जवानी लौटा रहीं दवाई
यह सुन के एक बूढ़ा देखो मचल रहा है।

❖❖❖

संपर्क : 09810243966

थोड़ा सा विश्राम

– बी. एल. गौड़

धीरे धीरे लगी उतरने
मेरे आँगन शाम
थका हुआ तन माँग रहा अब
थोड़ा सा विश्राम।

बड़ी ढीट वे बीती बातें
बिना बुलाये आतीं
रात न काटे कटती अपनी
वे बैठी बतियातीं
सुनते सुनते बातें उनकी
होने लगती भोर
मंद पवन संग आने लगता
कुछ चिड़ियों का शोर
वातायन से देखा बाहर
अंबर हुआ ललाम।

सूरज के संग ख़ूब निभाई
हमने जग की रीति
घाट घाट गंगा के घूमे
कहीं न पाई प्रीति
मन की पीर घटाने को हम
पहुँचे वृंदावन
सारी रात जाग कर देखा
रिक्त रहा मधुवन
राधा रोज़ निहारें पथ को
जिधर गये घनश्याम।

मानव लोभी और लालची
कभी नहीं संतोष
पा लेता दुनिया की दौलत
फिर भी ख़ाली कोष
लंबी उम्र बिता कर कहता
है जीवन निस्सार
माया के बंधन में पड़कर
जान न पाया सार
जब तक मर्म समझ में आता
आ पहुँचा अवसान।

❖❖❖

संपर्क : 9810173610

राकेश पाण्डेय की कविताएं

आम

गांव में
एक बाग है,
उसमे बहुत से आम है।
जिनके लिए
मै खास हूँ।
मेरे जाने से उनकी
मिठास बढ जाती है।
कितने आम तो टहनिया छोड़
मेरे साथ घर चल पड़ते है,
लंगड़ा और सिन्धूरी तो लड़ पड़ते हैं
दशहरी को शहरी बाबू कहते हैं ।

घर पर माँ
इन आमों की गुठलियाँ भी नहीं फेंकती
न जाने क्या क्या बना देती है
कुछ के तो नए पेड़ लगा देती है।
आज दिल्ली में
मेरे पास
बहुत से आम हैं
लेकिन बाग नहीं,
जिन्हें चूसता हूँ
और फेंक देता हूँ।

गर्मी

गाँव में था
तो पेड़ की छाँव से
मिट जाती थी गर्मी,

पढ़ने कस्बे में आया
तो पंखे से
मिट जाती थी गर्मी,

कमाने शहर आया
तो कूलर से
मिट जाती थी गर्मी,

आज दिल्ली में
ए. सी. से भी नहीं मिटती है
मेरी गर्मी,
ज्यों ज्यों
मेरा विकास हुआ
मै और गर्म होता चला गया।

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार कंहा है?

सरकार नहीं जानती,
न्यायालय नहीं जानते,
अधिकारी नहीं जानते,

जनता जानती है।

सिर्फ इतना ही,
कौन सा काम
कहाँ,
किससे,
कितने में,
होगा।

भ्रष्टाचार कहाँ है?
कोई नहीं जनता।

❖❖❖

संपर्क : 9810180765

बिटिया बड़ी हो रही है

– उमेश चौहान

बिटिया बड़ी हो रही है
माँ को दिन–रात यही चिंता खाए जा रही है कि
बिटिया शादी के लिए हाँ क्यों नहीं करती
और कितना पढ़ेगी अब
ज्यादा पढ़ लिख कर करेगी भी क्या
कमाऊत पति मिलेगा तो
जिंदगी भर सुखी रहेगी
इतनी उमर में तो इसको जनम भी दे दिया था मैंने
माँ की खीझ का शिकार नित्य ही होती है बिटिया।
बिटिया जैसे–जैसे बड़ी हो रही है
दिन–रात आशंकाओं में जीती है माँ
जाने कब, कहाँ, कुछ ऊँच–नीच हो जाय
सड़कों पर आए दिन
लड़कियों को सरे आम उठा लिए जाने की घटनाओं से
बेहद चिंतित होती है माँ
स्वार्थी युवकों के प्रेम–जाल में फँस कर
घर से बेघर हुई तमाम लड़कियों के हाल सुन–सुन
नित्य बेहाल होती है माँ।
माँ चौबीसों घंटे नजर रखती है बिटिया पर
उसका पहनावा,
साज–श्रृंगार,
मोबाइल पर बतियाना,
बाथरूम में गुनगुनाना,
सब पर निरंतर टिका रहता है माँ का ध्यान
जैसे बगुला ताकता रहता है निर्निमेष मछली की चाल,
माँ जैसे झपट कर निगल जाना चाहती है
बिटिया की हर एक आपदा।
बिटिया बचना चाहती है
माँ की आँखों के स्कैनर से
वह चहचहाना चाहती है
बाहर आम के पेड़ पर बैठी चिड़िया की तरह
वह आसमान में उड़ कर छू लेना चाहती है
अपनी कल्पनाओं के क्षितिज को
इसीलिए शायद बिटिया नहीं करना चाहती
शादी के लिए हाँ
पर उसकी समझ में नहीं आता कि
चारों तरफ पसरी अनिश्चितताओं के बीच
वह कैसे निश्चिंत करे अपनी माँ को
और आश्वस्त करे उसे अपने भविष्य के प्रति।

❖❖❖

सत्ता का संग्राम

– ब्रजराज सिंह तोमर

सत्ता का अब है संग्राम
जोधा जुड़ने लगे तमाम
करते नहीं तनिक विश्राम
खूब मच रहा है कोहराम
देखें क्या होता परिणाम
रघुपति राघव राजा राम

अब न चैन है आठों याम
मुर्गा, मीट, मटन औ दाम
ऊपर से मदिरा का जाम
यही आ रहे हैं अब काम
जातिवाद भी है अब आम
रघुपति राघव राजा राम

सत्ता के सब पंडे हैं
तरह तरह के झंडे हैं
झंडों में भी डंडे हैं
सब के सब मुस्टंडे हैं
अब न जीभ पर रही लगाम
रघुपति राघव राजा राम

नोटों से सब चंगे है
वाटों के भिखमंगे हैं
सारे तीन तिलंगे हैं
सब हमाम में नंगे हैं
रहे परस्पर कर बदनाम
रघुपति राघव राजा राम

द्वार–द्वार पर जाते हैं
लोगों को भरमाते हैं
बहलाते फुसलाते हैं
पैरों पर पड़ जाते हैं
अपना समझों मुझे गुलाम
रघुपति राघव राजा राम

प्रत्याशी यदि नेता है
वोटर भी अभिनेता है
भेद न मन का देता है
सब का बना चहेता है
खूब झूठ से लेता काम
रघुपति राघव राजा राम

घनी लड़ाई जारी है
भारी मारा मारी है
वोटर सब पर भारी है
मान रहा ना यारी है
वैसे सब से दुआ सलाम
रघुपति राघव राजा राम

जाति धर्म का लेकर नाम
छान रहे कस्बे औ ग्राम
लगता अब न शीत औ घाम
करते हैं आराम हराम
भटक रहे हैं सुबहो शाम
रघुपति राघव राजा राम

हर प्रत्याशी दादा है
चमचा उससे ज्यादा है
बेशर्मी को लादा है
करने को बस वादा है
साष्टांग दंडवत प्रणाम
रघुपति राघव राजा राम

आओ सब मिल डालें वोट
जिस प्रत्याशी में हो खोट
उस पर करो करारी चोट
भले व्यक्ति को करो सपोट
भलमनसी का दो ईनाम
रघुपति राघव राजा राम

अब सब को है यह दरकार
नयी बने ऐसी सरकार
चले व्यवस्था भली प्रकार
'तोमर' को भी हो स्वीकार
बिल पारण में फँसे न झाम
रघुपति राघव राजा राम

❖❖❖

संपर्क : आजाद नगर,
हरदोई

वो

– 'सर्वेश' चन्दौसवी

सत्यता का पतन, अर्चना का दमन, हर घड़ी विष वमन वो किए जा रहे।
आस्था का दलन, भावना का दहन दुष्टता को नमन वो किए जा रहे।।

त्याग से दूर हैं, दर्प से चूर हैं।
अग्नि–पथ पर चलें द्वेष मन में लिए।।
विद्वता के लिए निर्दयी–क्रूर हैं।
अनगिनत छद्म के रोग तन में लिए।।

वासना की चुभन, नग्नता की छुअन, काम–पीड़ित हनन वो किए जा रहे।
सत्यता का पतन, अर्चना का दमन...

मर्म जाने नहीं विश्व–बन्धुत्व का।
हर समय आपदाएँ उभारें नई।।
कंटकाकीर्ण कर दें सहज मार्ग को।
उलझनें नित धरा पर उतारें नई।।

तीव्र दुख की अगन, कुद्ध मन की जलन, धर्म को निर्वसन वो किए जा रहे।
सत्यता का पतन, अर्चना का दमन...

स्वार्थ में लिप्त ऐसे हुए रात–दिन।
कुछ सुझाई न दे शुभ–अशुभ अब उन्हें।।
लालसा ने कसीं पट्टियाँ नेत्र पर।
कुछ दिखाई न दे शुभ–अशुभ अब उन्हें।।

कुछ न चिन्तन–मनन, व्यर्थ झूठे वचन, पाप हर दिन सघन वो किए जा रहे।
सत्यता का पतन, अर्चना का दमन...

❖❖❖

संपर्क : 09654463456
08826982882

हम पर दुख का परबत टूटा तब हमने दो–चार कहे
उस पे भला क्या बीती होगी जिसने शे'र हज़ार कहे
–बालस्वरूप 'राही'

शायर की सफलता उसके क़लाम के ज़िन्दा रहने में है : 'सर्वेश' चन्दौसवी

श्री सर्वेश चन्दौसवी आज के दौर के एक ऐसे नामचीन कवि और शायर हैं जो हिन्दी और उर्दू दोनो भाषाओं पर समान अधिकार रखते हैं। आप गीत–ग़ज़ल और शायरी पर प्रामाणिक दख़ल रखते हैं। आपकी काव्य–विधाओं पर जो पकड़ है शायद और किसी कवि–शाइर में ऐसी पकड़ देखने को नहीं मिलती। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान दौर में आप सर्वाधिक काव्य–प्रतिभा–संपन्न व्यक्तियों में से एक हैं। आपकी हाल ही में काव्य की अलग–अलग विधाओं पर एक साथ 14 किताबें प्रकाशित हुई हैं। यह अपने आप में हिन्दी साहित्य जगत में एक असाधारण घटना है। पारस–परस के संपादक शिवकुमार बिलग्रामी ने इनकी उपलब्धियों और इनके लेखन के बारे में विस्तार से बातचीत की। यहाँ प्रस्तुत हैं उसी बातचीत के अंश–

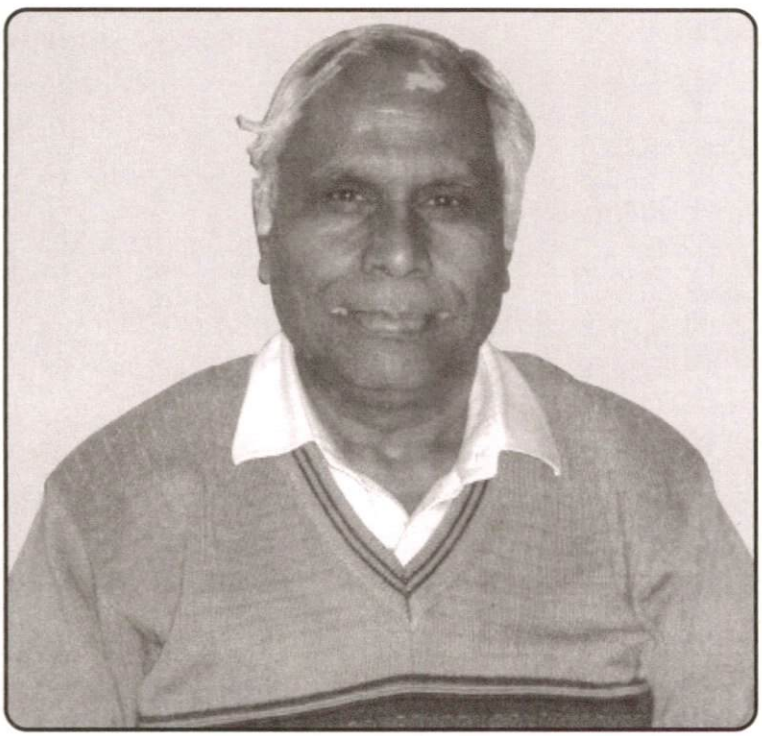

प्रश्न : आपकी साहित्य साधना कब से ज़ारी है?

उत्तर : मैंने 1972 में लिखना शुरू किया था। तब मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवों को हिन्दी में गीतों के माध्यम से व्यक्त करता था।

प्रश्न : व्यक्तिगत अनुभव ? कोई विशिष्ट व्यक्तिगत अनुभव था ?

उत्तरःहुआ यूँ कि शादी के बाद पत्नी कुछ समय तक मेरे साथ रहीं और फिर मायके चली गईं। छह महीने तक वहीं रहीं। उन दिनों आज के जैसा माहोल नहीं था। मिलना–जुलना आसान नहीं था। एक तरह से छह महीने के उस पत्नी वियोग ने मुझे कवि बना दिया।

प्रश्न : जब आपने हिन्दी में लिखना शुरू किया, तो उर्दू की तरफ कैसे मुड़ गये ?

उत्तर : मैंने गीतों से शुरूआत की थी। मंच पर मैं तरन्नुम में गीत पढता था। लोग मेरी तारीफ़ करते थे। उस समय, मेरे शहर के एक तथाकथित कवि थे, मैं नाम नहीं लेना चाहता हूँ, उन्होंने मेरी प्रतिभा की सराहना तो की, साथ ही यह भी कहा कि मैं उनका शिष्य बन जाऊँ। मैं नहीं बना। उन्होंने दबाव बनाया। मैं फिर भी नहीं बना। इस पर उन्होंने सारे संयोजको से मेरा बायकाट करने को कह दिया। उस समय मैं इतना मज़बूत नहीं था कि उन लोगों के सहयोग के बिना अपने पैर जमा सकता। लिहाजा मुझे उर्दू की ओर रुखसत होना पड़ा।

प्रश्न : उर्दू आपने पढ़ी थी ?

उत्तर : नहीं, पहले से बिल्कुल नहीं पढ़ी थी। लेकिन जब मेरे सम्मान को ठेस पहुंची तो मैंने उर्दू सीखना शुरू किया। उन दिनों बड़े–बड़े मुशायरे हुआ करते थे। लोग सारी–सारी रात जगकर मुशायरे सुनते थे। मुझे लगा कि यदि मैं उर्दू सीख कर शायरी करने लगूँगा तो शायद मुझे वहाँ इज्ज़त से नवाजा जायेगा और मुझे मंच भी मिल जायेगा। इसलिए जी तोड़ मेहनत कर मैंने किताबों से ही उर्दू सीखी, पढ़ी और छन्द शास्त्र का अध्ययन किया।

प्रश्न : जैसा आपने सोचा वैसा हुआ ?

उत्तर : जैसा सोचा वैसा नहीं हुआ। मैंने 1974 से उर्दू की खिदमत करना शुरू किया। आज लेखन आप सबके सामने हैं। मुझे इस बात का अफसोस है कि मुझे वहाँ भी जगह नहीं मिली। उर्दू वालों ने मुझे बाहरी समझा। मेरा हौसला अफजाई के बजाय मुझे दरकिनार करने की साजिशें की गई और वो लोग इसमे कामयाब भी हुए

प्रश्न : आपको लगता है कि अच्छा काम करने के बावजूद आपको अच्छा ईनाम नहीं मिला ?

उत्तर : ईनाम की बात नहीं है। बात acceptability की है। उस समय मैंने अपनी शायरी में नये मुहावरे, नई बहर, नया मफहूम देने की कोशिश की लेकिन बड़े शायरों ने ताज़ा हवा मंजूर नहीं की।

प्रश्न : चालीस साल से लिख रहें है लेकिन चालीस बाद एक साथ 14 किताबें?

उत्तर : मैंने बहुत से शायरों की जीवनी को पढ़ा। वे अपने परिवार के प्रति एकनिष्ठ नहीं होते थे। उनके परिवार को काफी कष्ट भोगते देखा। इसलिए मैंने तय किया कि पहले अपने परिवार की परवरिश ढंग से करूँगा। उसके बाद किताबें प्रकाशित कराऊँगा। 30 नवम्बर 2013 को मेरे छोटे बेटे की शादी हो गई। इसके बाद इन्हें प्रकाशित करने का मन बनाया। प्रकाशक ने 2014 के बुक फेयर में किताबें रिलीज करने की बात कही थी। इसीलिए 14 किताबे एक साथ प्रकाशित की गईं।

प्रश्न : लोगों को सर्वेश चन्दौसवी को क्यों पढना चाहिए।

उत्तर : बहुत सहज–सरल प्रश्न है। हर शायर का कलाम आने वाली पीढ़ियों के लिए होता हैं। मेरे कलाम में विविधता इतनी है कि और कहीं नहीं दिखेगी। 40 साल के तजुर्बात शामिल है। इसके साथ–साथ मैंने हिन्दी और उर्दू–जबानों को एक साथ जोडने की कोशिश की है, उसके कारण भी नई पीढ़ी को पढ़ना चाहिए। गीतों के नये–नये छन्द, ग़ज़लों के नये–नये अवज़ान भी पढ़ने वालों के लिए मशाल–ए–राह का कार्य करेंगे।

प्रश्न : आपकी 14 किताबों में से पाठकों को सबसे पहले कौन सी किताब पढ़नी चाहिए?

उत्तर : यह पाठक की अपनी रूचि और लगाव पर निर्भर करेगा कि वह कौन सी पुस्तक का पहले चयन करता है। मेरी एक से लेकर चौदह तक न तो कोई पहली है, न आखिरी। पाठक स्वयं अपनी रूचि के हिसाब से चयन करें।

प्रश्न : आपको हिन्दी वालों ने नकारा, उर्दू वालों ने जगह नहीं दी, फिर भी साहित्य साधना में लगे रहे ? ऐसा कौन–सा मोह था जो आप इसे छोड़ नहीं पाये ?

उत्तर : मेरे अन्दर जो एक कलाकार था उसने खत्म होना स्वीकार नहीं किया। दूसरी, मेरे स्वभिमान ने खंड–खंड होना नहीं सीखा है। जो समझौता परस्त है, वो समाज का मार्गदर्शन नहीं कर सकता, समाज को आइना नहीं दिखा पाता। हिन्दी कविता के मंच को मैं बहुत पहले छोड़ चुका था। उर्दू मंच पर भी तथाकथित बड़े शायरों ने मेरा विरोध किया क्योंकि उन्हें डर था कि मेरा वजूद उनके लिए खतरा हो सकता है। इसलिए उर्दू में आगे नहीं बढ़ सका।

प्रश्न : आप इल्मी हो गये, फिल्मी हो जाते तो आपको रोज़गार मिलता, पैसा मिलता, आप का फन लाखों करोड़ों लोगों के सामने पहुंचता। क्या कभी इस बात पर अफसोस हुआ ?

उत्तर : प्रश्न धन से जुड़ा हुआ हैं। मेरी सोच जब इस सवाल पर गौर करती है कि पैसा तो माफिया, स्मगलर देशद्रोही भी कमाते हैं, लेकिन दौलत कमाना मक़सद नहीं था। मकसद था अपने फ़नकार को ज़िन्दा रखना। उर्दू और हिन्दी मंचों पर बहुत खेमेबाज़ी है, इसलिए मैं इससे भी दूर होकर साहित्य साधना करता रहा। खुशामद परस्त न कल था न आज हूँ। जब तक दम में दम है तब तक स्वाभिमानी बनकर जिऊँगा।

प्रश्न : क्या दिल में ऐसी कोई ख्वाहिश है कि आपको भी पदम श्री, पद्म भूषण, ज्ञानपीठ जैसा कोई अवार्ड मिले तो साधना सफल हो जाये।

उत्तर : शायर की सफलता उसके कलाम के ज़िन्दा रहने में है। मैं निःसंकोच यह कह सकता हूँ कि मेरे शायर को जिन्दगी इस 14 काव्य संग्रह के रूप में मिल चुकी है। मेरा कोई शेर मुझे सुनाता है तो वह मेरे लिए सबसे बड़ा अवार्ड होता है। मुझे कोई भी अवार्ड मेरी ख्वाहिशों के हिसाब से नहीं मेरे क़लाम के हिसाब से मिलेगा। अगर मुझे मेरी मेहनत का सिला मिलेगा तो खुशी होगी। जब आने वाली नस्लें मुझे याद रखेंगी, मेरा क़लाम वतन की सरहदों से पार जायेगा तो हिन्दुस्तान का नाम ऊँचा होगा। मेरे लिए यह भी किसी अवार्ड से कम न होगा।

❖ ❖ ❖

धमाल हुआ होली में

– महेन्द्र शर्मा

होली नहीं खेलूंगा कसम मैंने खाई थी,
इसीलिए कुंडी दरवाज़े की लगाई थी।
तभी हल्ला–गुल्ला करती टोली एक आई थी,
तोड़ दरवाज़ा मेरी गति जो बनाई थी।

फट के पजामे का रूमाल हुआ होली में...
कभी नीला–पीला कभी लाल हुआ होली में।

चार साथियों ने मुझे कांधे पे उठाया था,
राम नाम सत्य बोलो, नारा ये लगाया था।
और फिर लाके गलियारे में लिटाया था,
कीचड़ से मेरे अंग–अंग को सजाया था।

फिर मत पूछो क्या बवाल हुआ होली में...
कभी नीला–पीला कभी लाल हुआ होली में।

जैसे–तैसे बचके मैं घर लौट आया था,
घबरा के पत्नी ने घर से भगाया था।
वो ही काम आई मुझे गले से लगाया था,
घोल–घोल मीठा प्यार से पिलाया था।

प्यार के नशे में फिर कमाल हुआ होली में...
कभी नीला–पीला कभी लाल हुआ होली में।

प्रेम के नशे में दो जहान झूम उठे थे,
हरे–भरे खेत–खलिहान झूम उठे थे।
बच्चों संग बूढ़े व जवान झूम उठे थे,
हो के मस्त–मस्त सब किसान झूम उठे थे।

खुशी का ख़जाना पा निहाल हुआ होली में...
कभी नीला–पीला कभी लाल हुआ होली में।

खेलना है खेलो होली प्रीत और प्यार की,
होली मत खेलो द्वेष भाव तक़रार की।
और होली खेलो सद्भाव सुविचार की,
देश के सुधार की समाज के सुधार की

जगह–जगह आज यह ख़्याल हुआ होली में....
कभी नीला–पीला कभी लाल हुआ होली में।

❖❖❖

संपर्क : 9868153592

न कहना, कभी अलविदा

– विजय सिंह 'विजय'

बैठा था दरवाजे पर
तीखी ठिठुरन के मारे।
नहीं पता था मेरा कौन
मै था किसके सहारे।।

तभी प्यारी सी दो आँखों ने
आकर आँखों में झांका।
आगे पीछे ऊपर से नीचे
मेरी कृश काया को ताका।।
आयी दया उस दयावान को
सब उसको "चुनमुन" कहते थे
सब भाई और प्यारी बहना
संग मेरे हिलमिल रहते थे।।
हौले से आयी इस दिन
मेरी किस्मत खुलने की बारी।
जब ममतामयी ने कर डाली
आश्रय देने की तैयारी।।
थोड़ा ठिठका फिर सहमा
तब धीरे से अंदर आया।
चहक सुनी जब अपनों की
सब कुछ सपना जैसा पाया।।
नहीं जानता था मैं नन्हा
कि माँ कैसी होती है।
जब पायी प्यारी सी थपकी
लगा कि ऐसी होती है।।

जब सबने मुझको प्यार दिया
और थोड़ा सा दुलराया।
मेरी नन्हीं सी पलकों में
खुशी का आँसू ढुलकाया।।
तब याद आया वो दिन
जब द्वारे सबके दौड़ रहा था।
कैसा फेर था माया का
अब खुशियों में तैर रहा था।।
माँ की मीठी ममता थी
बहना का मृदुल दुलार था।
छोटे छोटे अग्रजों में भी
मेहमानों सा सत्कार था।।

कभी फुदकता कभी चहकता
कभी खूब इठलाता था।
सबके संग में खेल खेल कर
सबका मन बहलाता था।।
बड़ा गर्व था किस्मत पर
स्वर्ग सा घर जो पाया था।
पर खुशियाँ जल्दी बीत गयीं
मैं कर्म भोगने आया था।।
जाने कैसे किये कर्म थे
बीमारी का हुआ प्रकोप
औषधि सब ही व्यर्थ गयी
हुआ शक्ति का पूरा लोप।।

चलता था लंगड़ा कर
मृत सी काया का बोझ उठाकर।
कभी कुपित हो जाता था
अपनों से थोड़ा झल्ला कर।।
अब किससे मैं झल्लाऊँ।
किसको अपने तीर बुलाऊँ।
आया समय विदाई का
अब किससे अपनी व्यथा सुनाऊँ।।
छोड़ रहा हूँ इस दुनियाँ को
दरबार प्रभू के जाऊँगा।
तुम सबकी बस यादें होंगी
कैसे तुम बिन रह पाऊँगा।।
बस आँसू होंगे आहें होंगी
और होंगी सबकी यादें।
कभी न आयें आँसू तुमको
होठों पर होंगी ये फरियादें।।
भर कर आँसू आँखों में
ले रहा हूँ आज विदा।
पर अपने दिल से तू
न कहना कभी अलविदा।।
अलविदा! अलविदा!!

❖❖❖

सम्पर्क : 09455247142

चुलबुले दोहे

–डॉ॰ सुनील जोगी

धर्म का धंधा कर रहे, चैनल वाले संत
भीतर तो पतझर भरा, बाहर दिखे बसंत।

मत पूछो जनतंत्र में, नेताओं के रंग
खुद तो ये चरखी हुए, जनता कटी पतंग।

फागुन आया खिल गए, टेसू और कनेर
गदराया यौवन कहे, प्रियतम मत कर देर।

साधो ऋतु वसंत की, महिमा बड़ी अनंत
होली में हुलसे फिरें, जिन्हें कहें सब संत।

गली–गली में हो रहा, होली का हुड़दंग
सब पानी–पानी हुए, महंगे हो गए रंग।

घर में जब मुश्किल हुआ, मिलना रोटी दाल
होली में दामाद जी, खिसक गए ससुराल।

दादा को गठिया हुआ, किसे सुनाएँ पीर
पीछे–पीछे घूमती, बुढ़िया लिए अबीर।

लैंडलाइन पत्नी हुई, घिसी–पिटी सी टोन
होली में साली हुई, ज्यों मोबाइल फोन।

एक हाथ गुझिया लिए, एक हाथ नमकीन
फिर भी होठों को लगे, साली बड़ी हसीन।

❖❖❖

जहाँ में हर बशर मजबूर हो ऐसा नहीं होता
हर इक राही से मंज़िल दूर हो ऐसा नहीं होता

–'अम्बर' खरबन्दा

गंगापुत्र

–रेखा सिंह

हे भीष्म! तुम पूजनीय हो
क्योंकि तुम मेरे पूर्वज हो
तुम आदरणीय हो
क्योंकि कुशल सत्ताधारी
वीर–धनुर्धर हो
परंतु–
तुम मेरे आदर्श नहीं हो सकते
पथ–प्रदर्शक नहीं हो सकते।

यह कुरूक्षेत्र का युद्ध
कौरवों पांडवों का नहीं
न्याय–अन्याय का नहीं
यह सिर्फ तुम्हारी अपनी लड़ाई थी
अपने अमरत्व से मुक्ति की थी।

हे भीष्म!
तुमने यह क्या किया!
क्यों किया कुरुवंश का विस्तार ?
क्यों लिया सत्ता संभालने का भार ?

तुम चाहते तो अम्बा
शिखण्डी बनने से बच जाती
तुम चाहते तो द्रोपदी
कलंकित होने से बच जाती

तुम चाहते तो युधिष्ठिर
मिध्या बचन से बच जाते
तुम चाहकर भी कुछ न कर सके
मूक बधिर सत्ताधारी बन
हर अन्याय को देखते रहे
और जीवन भर
हस्तिनापुर का संरक्षक बने रहे।

तुमसे कहीं अच्छा तो एकलव्य था
गुरू दक्षिणा में अंगूठा दे डाला,
तुमसे कहीं अच्छा तो दानवीर कर्ण था
कुछ न होकर बहुत कुछ कर दिखाया,

तुमसे कहीं अच्छा तो अर्जुन था
परिजनों को देख द्रवित हुआ,

और तुम!
शासनबद्ध हो असमर्थता दर्शाते रहे
तुम मरकर भी अमर हो गए
सारी दुनिया के भीष्म पितामह कहलाए
लेकिन
तुम मुझे छल नहीं सकते
तुम पूजनीय हो सकते
श्रद्वेय वीर धनुर्धर हो सकते
मेरे आदर्श नहीं हो सकते
पथ–प्रदर्शक नहीं हो सकते....।

❖❖❖

संपर्क : पुणे, महाराष्ट्र

उतरी गंगा स्वर्ग से

– कल्पना रामानी

उतरी गंगा स्वर्ग से, लिए वेगमय धार।
घनी जटाओं में बसा, शिव ने झेला भार।
शिव ने झेला भार, उसे माथे बैठाया,
मृत्युलोक में भेज, धरा को स्वर्ग बनाया।
अमृत जल का घूँट, करे हर रोगी चंगा,
लिए वेगमय धार, स्वर्ग से उतरी गंगा।

तुमसे मोक्ष मिला हमें, तुम ही तारनहार।
माँ गंगा! तुमने किए, जन–जन पर उपकार।
जन–जन पर उपकार, प्यार अपना बरसाया,
किया जहाँ विश्राम, नगर वो धाम कहाया।
दिये स्वस्थ वरदान, उबारा जग को गम से,
तुम ही तारनहार, मोक्ष भी पाया तुमसे।

मोक्ष सभी को चाहिए, गंगा तेरे द्वार।
पर तेरे इस द्वार का, कौन करे उद्धार।
कौन करे उद्धार, पुण्य पाने सब आते,
कई प्रदूषित तत्व, तुझे अर्पण कर जाते।
निर्मलता की बात, सूझती नहीं किसी को,
माँ बस तेरे द्वार, चाहिए मोक्ष सभी को।

यत्न भगीरथ हों अगर,गंगा फिर मुस्काय।
नवगति–नव लय तान से, कल–कल बहती जाय।
कल–कल बहती जाय, प्राण हों लहर–लहर में,
खिलें खेत मैदान, मिले जल गाँव–शहर में।
प्यारा भारत देश, सकल बन जाए तीरथ,
गंगा फिर मुस्काय, अगर हों यत्न भगीरथ।

चलिये मित्रों प्रण करें, हम भारत के लाल।
गंगा फिर निर्मल बने, ऐसा करें कमाल।
ऐसा करें कमाल, सभी मन से हों तत्पर,
हर संभव श्रमदान, करें सब साथी मिलकर।
पूरा हो अभियान, घरों से आज निकलिए
हम भारत के लाल, प्रण करें मित्रों चलिये।

❖❖❖

सबसे अमीर लड़की

–नीलम मैदीरत्ता 'गुँचा'

सब से अमीर होती है वह लड़की,
जिस के पास खोने के लिए,
अपनी इज्ज़त के सिवा कुछ नहीं होता,
और यह जानते हुए भी,
कि भीड़ भरे रास्तों पर,
उसे कोई छू पाए या ना छू पाए,
पर उछाले जा सकते है पत्थर और कीचड़,
वो तोड़ती है अपनों का विश्वास,
लांघती है घर की दहलीज़,
बांधती है सर पर कफ़न,
मुहँतोड़ देती है जवाब,
उसे नहीं दिखाई देते,
अपने आँचल के धब्बे,
दिखती है तो सिर्फ,
मछली की आँख,
लड़ती है कर्मक्षेत्र,
और जिंदा रह कर,
जीती है अपनी ज़िन्दगी....
सब से अमीर होती है वो लड़की....
सब से गरीब होती है वह लड़की,
जिस के पास खोने के लिए होती है,
अपनी इज्ज़त के साथ–साथ,
माँ बाय की–इज्ज़त,
अपनों का प्यार और विश्वास,
आनबान और शान–,
वो पहनती है रंगबिरंगी चूड़ियाँ,
सीती है अपनी गुलाबी जुबान,
ओढ़ती है सपनों की चूनर,
मरती है रोज़ लम्हा लम्हा,
और मुस्कुराते हुए,
जीती है अपनी जिन्दगी
सब से गरीब होती है–वह लड़की!

❖❖❖

संपर्क : 08800398889

हम धरती पर ही खुश हैं अपना आकाश सँभालो तुम
आड़ी–तिरछी रेखाओं का, जो भी अर्थ लगा लो तुम
मोती, माणिक नहीं, सिर्फ़ है रेत, रेत और रेत यहाँ
मैंने पहले ही बोला था, मुझको नहीं खँगालो तुम

–विनीता गुप्ता

21वीं सदी के रिश्ते

– अंजु (अनु) चौधरी

आज के मशीनी युग में
समय कुछ ज्यादा ही
महँगा हो गया है
आप सब अब
अवकाश निकालो
आप लोगों से दो
बातें हैं करनी कि
सोया है सबका विश्वास
उसे तो जगा लो
क्योंकि
आज़ रिश्तों की पहचान
कठिन–सी हो गयी है
हर रिश्ते में सिर्फ
प्यार की
कमी–सी हो गयी है
माँ–बाप और संतान का
रिश्ता सिर्फ पालन–पोषण
और नसीहतों तक ही
सिमटकर रह गया है
क्या किया उन्होंने
संतान के लिए?
ये प्रश्न उनके दिमाग में
प्रेत बन कर बैठ गया है
कुछ नहीं?
सिर्फ
अपना फर्ज ही तो
निभाया है...
बदले में कुछ चाहने
का उन्हें हक नहीं
क्योंकि
बच्चों की अब
तो अपनी ही जिन्दगी
हो गई है
और पति–पत्नी का रिश्ता
भी तो सिर्फ
तन्ख्वाह दिन तक का
ही रह गया है
क्योंकि
दोनों की अब अपनी–अपनी
निजी जिन्दगी है भाई
अजब–सी दुनिया है ये
दिल में है क्या
न जाने कोई...
क्यूँ आज पोते–पोतियाँ
दादा–दादी को नहीं जानते
वो इस रिश्ते को नहीं पहचानते...
क्योंकि
बूढ़े माँ–बाप
घर की शोभा बिगाड़ते है...
और उनकी आजादी में खलल डालते हैं
इसलिए वो लोग तो
वृद्धाश्रम में ही भाते हैं...
देखो तो, भाई–भाई जान के
दुश्मन बन बैठे हैं...
रिश्तों की मिठास की कमी
को अब स्वीट डिश
जो पूरा करती है...
टूटे हुए रिश्तों का
आज दौलत से एक
अटूट रिश्ता जुड़ गया है...
फिर भी मैं
ये ही कहूँगी कि
ढूँढ़ सकते हो तो ढूँढ़ लाओ
वो स्वयं के रिश्ते
जो खो गए हैं
इस दुनिया के चलन में
वो पक्के धागों से रिश्ते
वो रिश्तों की सच्ची मिठास...
वो प्यार, वो बंधन...
वो हर चेहरे पर मुस्कान
वो हँसी–ठिठोली का वातावरण
वो अपनों पर विश्वास
जो मिलता था सबको
एक संयुक्त परिवार में...

❖❖❖

संपर्क : 09654463456
08826982882

जैसे मुझमें जान नहीं है

–विजयलक्ष्मी

सबने मुझको काँच समझकर ऐसे तोड़ा
जैसे मुझमें जान नहीं है
मेरा कोई अरमान नहीं है।

x x x

किसी की मुस्कान पे
दिल निसार हो जाये
किसी की एक नज़र से
जन्नत का दीदार हो जाये
बेशुमार मुहब्बत कहते हैं शायद इसी को
जब किसी की यादों से ही....
ज़िन्दगी को प्यार हो जाये

x x x

कोई तो मुझे भी प्यार करे
कोई तो मुझ पे भी ऐतबार करे
कोई तो मेरी भी देखभाल करे
कोई तो मेरी भी परवाह करे
कोई तो दिल अपना मुझ पे निसार करे

x x x

कहीं यू ही जीवन न कट जाये
समय बीता हुआ वापस न आये
किसी क्षण को न तुम यूं ही गँवाओ
उठो अब जाग भी जाओ
उठो अब जाग भी जाओ

x x x

रिश्तों को पाकर भी रही अधूरी–सी मैं
हर पल खुद से ही रही खफा–खफ़ा सी मैं
मेरे मुकद्दर में नहीं लिखीं थीं खुशियां शायद
इसीलिए हर पल मैं, रही जूझती खुद से

❖❖❖

संपर्क : 09810816760

क्या बतलाऊँ तुमको क्या हूँ
दर्दभरी मैं एक कथा हूँ
काश पता चल जाए उनको
मैं भी उनका एक पता हूँ

–नरेश शांडिल्य

मेरे बाबू जी !

– शुभदा बाजपेयी

जब तक तुम थे हमको थी न चिंता बाबू जी !
आज नहीं तुम, तो हम खो गए जग में बाबूजी !

तुम जो देते प्यार हमें थे, अब कोई न देता बाबू जी,
तुम जैसे आशीर्वचनों की बौछार न अब है बाबू जी !

जब छोटे थे तब आपके कंधे पर हम घूमे बाबू जी !
अब आप नही तो दुनिया में सब फीका लगता बाबू जी !

मेरे छोटे कदमों को परवाज सदा देते थे बाबू जी,
जब जाती थी स्कूल को पढ़ने पैसे देते बाबू जी !

मेरी हर गलती पर भी मुस्कान लुटाते बाबू जी
आज नही हो संग मेरे तो पता चला है बाबू जी !

वो अम्मा के हाथों की रोटी संग आपके खाती थी,
मेरी भी थाली अम्मा संग में सदा लगाती थी !

दफ्तर से लौट के जब देर कभी घर आते थे,
मेरे नेत्र सदा द्वारे पर तेरी ही आहट पाते थे

मुझको अपना बचपन याद बहुत ही आता है,
क्यों चले गए तुम मुझे छोड़ कर जग से बाबू जी !

❖❖❖

संपर्क : एफ–263 लाडो सराय
नई दिल्ली – 24
मो0 : 09911917626

इस तरह कब तक हँसेगा–गाएगा
एक दिन बच्चा बड़ा हो जाएगा
आ गया वह फिर खिलौने बेचने
सारे बच्चों को रुलाकर जाएगा

–ओमप्रकाश 'यती'

हे मेरे चितवन के चकोर

–राजेश कुमार दुबे

मंजुल मधु का सागर अपार
तन से टकराता बार–बार
ले विपुल स्नेह से पद पखार
रस घोल पिलाता वह अपार
अंतःस्थल में उठता हिलोर
हे मेरे चितवन के चकोर
रससिक्त हृदय लेता फेरे
सीने में स्नेह भरा मेरे

पलकों में श्याम घटा घेरे
बूँदों नें डाले हैं डेरे
उर डूब रहा रस में विभोर
हे मेरे चितवन के चकोर

सुरभित अंचल की रेखा सी
मधुमय की सघन सुरेखा सी
झीना यौवन अषलेखा सी
जलमाला की अभिलेखा सी
साँसें करतीं उन्मत्त शोर
हे मेरे चितवन के चकोर

मन चंचल होकर डोल रहा
अवचेतन हो कुछ बोल रहा
हिय के नीरव पट खोल रहा
अंतर में मधुरस घोल रहा
मन–उपवन नाचे मन के मोर
हे मेरे चितवन के चकोर

तुम कभी मिले जीवन पथ में
हो अवलंबित इस मधुबन में
ज्यों स्वप्न सुमन सौरभ सुख में
बरसे अधराम्रित तन–मन में
विस्मित यौवन करता है शोर
हे मेरे चितवन के चकोर

नव तुषार के बिंदु बने हो
जीवन के प्रतिबिंब बने हो
मधुऋतु के अरविंद बने हो
विकल वेदना मध्य सने हो
समर्पित इस जीवन की दोर
हे मेरे चितवन के चकोर

❖❖❖

न बस में ज़िन्दगी इसके न क़ाबू मौत पर इसका
मगर इन्सान फिर भी कब ख़ुदा होने से डरता है

–राजेश रेड्डी

धरा का आधार

– राजेन्द्र कुमार सिंह 'कुमार'

नहीं रुकी है धरा वृषम श्रृंगों पर
अहि के फण पर।
रुकी हुई वह वीर व्रती के
प्राणकोष के पण पर
कमठ पीठ अथवा वराह बल
रोक न इसको पाता।
इसका भार वहन करने में
स्वयं मत्स घबराता।
दिनिश कुंजर भी अवनि कम्प को
रोक नहीं पाते हैं।
इसको थिर रख सकने में
दिग्पाल हार जाते हैं।
रुकी धरा संयमी विरल
निःस्वार्थ व्यक्ति के तप पर।
'सत्यंवद, धर्म चर' जैसे
महामंत्र के जप पर।
नारी पतिव्रत सदा इसको
रोके रखता है।
धीरां का धारित्व भाव
दृढ़ता प्रदान करता है।
न्यायाधीश लेखनी में वह
शक्ति वास करती है।
प्राण हथेली पर धर कर
जो सत्य बात कहती है।
सन्नारी को कामी की यदि
दृष्टि मुग्ध कर पाती।
होता विपथ सौर मण्डल सब
धरा रसातल जाती।।

❖❖❖

चिराग उसकी यादों का

– डा॰ विश्वदीपक बमोला

उस गुजरे वक्त का आज क्यूँ
जेहन में फिर से ख्याल आ गया
रूह के वीरान ज़र्रों से क्यूँ
सनम के होने का फिर से पैग़ाम आ गया

कभी ग़म की तपती धूप में तो
कभी दर्द के तपते रेगिस्तां में
दिल की आह भरी कराह लिये
मैं बेबस सा सिमट के रह गया

अनजानी डगर और सूनी राहों में
मैं बस निगाह बिछाता रह गया
एक चिराग है उसकी यादों का
जिसे मैं तूफानों से बचाता रह गया।

(2)

पूछता है आइना क्यूँ हैं आँखे नम

पूछता है आइना मुझसे
आँखें क्यूँ हैं आज नम
क्या हो गया आलम तुम्हारा
और किसने दिया है ये गम

कैसे बयाँ करें कहानी अपनी
कुछ तो पता हो हमें खता अपनी
क्यूँ मिली है ये सजा हमको
क्यूँ कोई हमसे यूँ खफा है
कैसे समझायें हम ज़माने को
जब दिल ही अपना हैरान है

प्यार के हसीन ख्वाब में मेरे
दर्द और आँसुओं की सौगात है
इब्तिदा–ए–इश्क से पहले मेरे
जिंदगी की इंतिहा आने को है

❖❖❖

संपर्क : 09650535689

बिटिया

– संजय वर्मा

माँ से बिटिया का
स्नेह होता है लाजवाब
बिटिया को सुलाती अपने आँचल में
पराग हो झोली में।

माँ की आवाज कोयल सी
और बिटिया की खिलखिलाहट
पायल की छम–छम सी
लगता है जैसे मधुर संगीत हो फिजाओं में।

माँ तो ममता की अविरल बहती नदी
बिटिया हो जैसे कलकल सी आवाज
निर्मल पावन जल की
लगता है जैसे पूजते आ रहे सदियों से इन्हें

माँ होती चांदनी सी
बिटियाँ हो सूरज की पहंली किरण
दोनों देती है रौशनी
अपने–अपने पथ/कर्तव्य की
लगता हो जैसे भ्रूण–हत्या का अंधकार हटा रही हो

माँ /बिटियों से
जन्म लेते है कई रिश्ते
ये होती है समाज का आधार
दोनों के बिना होता है जीवन सूना
लगता है जैसे इनमें बसती जीवन की साँसे।

❖❖❖

सम्पर्क: 125, शहीद भगत सिंह मार्ग
मनावर जिला–धार
(म. प्र.) 454446

सोचकर इतना बता

– बृजकिशोर सिंह 'बिहारी'

ए मेरे भाई जरा तू, सोचकर इतना बता,
प्यार की धरती पर क्यों, नफरत का बीज बो रहा।
है गगन में तारे कितने , पर नहीं लड़ते कभी,
तू भी तो उनका है हिस्सा, फिर क्यों नफरत ढ़ो रहा।।
ए मेरे भाई जरा तू.....
प्यार की धरती पर क्यों.....

हम सभी इंसान है, इंसानियत अपना धरम,
तू भी तो इंसान है, फिर क्यों भूला अपना करम।।
देख कुदरत की तरफ, चारो तरफ बस प्यार है,
फिर मेरे भाई तेरे दिल में, ये क्यों अंगार है।।
देख तुझको दे रहा, सदा, मेरे दिल की पुकार,
अब तो आ लग जा गले, तू, क्यों बन्दूक ढ़ो रहा।।
ए मेरे भाई जरा तू.....
प्यार की धरती पर क्यों.....

है लहू का रंग एक जब, और एक सी हैं बोलियाँ,
फिर क्या फर्क, हममे तुममे, तू जरा इतना बता।।
तूने सुना है कभी , ताकतवर का घर जलते हुए,
फिर किस भरम में नादा, अपनों का घर जला रहा।।
देख तुझको है, रसूले, अल्लाह का वास्ता,
छोड़ दे मेरे भाई तू, अब ये गलत रास्ता।।
बारूद की फसल पर, जब, उगते नहीं है फूल कभी,
फिर मेरे भाई बता, क्यों मौत की फसल, तू बो रहा।।
ए मेरे भाई जरा तू.....
प्यार की धरती पर क्यों.....

है अगर तुझको जेहाद, करना ही संसार में,
तू जेहाद कर साम्राज्यवाद, मक्कारों, के खिलाफ में।।
जो खेलते हो शतरंज, दोतर्फा सत्ता की बिसात पे,
तू जेहाद कर, मेरे भाई उनके खिलाफ में।।
जिनके आँखों में, खटकती हो, दूसरो की उपलब्धियां,
तू जेहाद कर, मेरे भाई, उनके खिलाफ में।।
जिन्होंने हुकूमत की हवस में, बेच डाली इंसानियत,
तू जेहाद कर, मेरे भाई, उनके खिलाफ में।।
जो भी इनका अपना था, उसके, ये हुकूमत वाले न हुए,
काम निकलते फेक दिया, उसे मौत के अंगार में।।
जिनकी खातिर तू खेल रहा, जो, अपनों के मौत की रंगरेलियां,
वक्त आने पर तुझे छोड़ देंगे, तू जरा मुझको बता।।
ए मेरे भाई जरा तू....
प्यार की धरती पर क्यों....

❖❖❖

संपर्क : 9702700452

गधे 'गधे' क्यों ?

– राजेन्द्र त्यागी

गधे क्या आदिकाल से ही गधे थे या इस विशेषण से उन्हें बाद में नवाजा गया? प्रश्न मौलिक भी है, गंभीर भी, और शोध का विषय भी! इसलिए जब से यह प्रश्न मेरे जह्न में अवतरित हुआ है, तभी से मेरा मन शोध की प्रसव–पीड़ा से पीड़ित है। मेरे जैसे खोजी प्रवृति व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक भी है! अतः स्वभाव के अनुरूप प्रश्न का जवाब खोजने की प्रक्रिया शुरू हो गई। जवाब हासिल करने के लिए मैंने गधों के चरित्र व स्वभाव पर एकाधिकार रखने वाले महान साहित्यकार कृशन चंदर के प्रिय गधे को चुना। कृशन चंदर के गधे को खोजना भी अपने आप में दुष्कर कार्य था। मगर जिन खोजे तिन पाइए की तर्ज पर एक दिन सफलता हासिल कर ही ली।

महान साहित्यकार कृशन चंदर के प्रिय गधे का मिलना मेरे लिये सुखद आश्चर्य था! क्योंकि मैंने उसे कहाँ–कहाँ नहीं खोजा, सत्ता के गलियारों में, आश्रमों के बाड़ों में, शिक्षालयों के बरामदों में, मगर नहीं मिला। मिला भी तो निर्जन एक खंडहर में!

अक्ल के पुतले गधे की दयनीय ऐसी दशा देख सुखद आश्चर्य यकायक दुखद आश्चर्य में तब्दील हो गया। अश्रुपूरित नेत्रों के साथ हम ने दादा को प्रणाम किया और फिर थोड़ा–सा फासला बना कर उनके चरणों में बैठ गये।

आसन ग्रहण करने के साथ ही हमारे मुँह से निकला, क्या हाल बना रखा है, कुछ लेते क्यों नहीं, दादा?

लेटे–लेटे ही दादा ने थूथड़ी ऊपर उठाई और बोले, मेरे हाल पर न जाओ, यह बताओ हमसे इतनी दूरी क्यों? लगता है, आदमी अभी सुधरा नहीं है!

दादा ने पिछली टांगे जमीन से रगड़ी और बोले, सुनो बरखुरदार! हमारी दुलत्ती पर न जाओ! ..आदमी की तरह हम गधे लोग बिना वजह दुलत्ती नहीं झाड़ा करते। वजह हो तो भी हर वजह पर नहीं! और, झाड़ते भी हैं तो सिर्फ आदमी को डराने के लिए!

क्षणिक मौन के पश्चात दादा पुनः उच्चारे, तुम ही बताओ अब तक कितने आदमी घायल हुए हमारी दुलत्ती से? ..अरे भाई! हम आदमी नहीं हैं कि आदमी की तरह आदमी को घायल करने के लिए दुलत्ती झाड़ते रहें।

दादा की अंतर्यामी क्षमता देख हम गदगद हो गये। हमारे मन में उनके प्रति उत्पन्न स्नेहमयी ज्वार–भाटा की गति और तेज हो गई। अपने आप पर शर्मिंदा हुए और शर्म के ही वाहन पर आरूढ़ हो कर उनके चरणों के करीब पहुंच गये!

श्श्दादा! आदमी और आदमी का दुलत्ती से संबंध हमारी समझ नहीं आया, जरा विस्तार से बताओ।श्श.. अनायास उठी लघुशंका हमने उनके सामने प्रस्तुत की।

दादा ने चेहरे पर मायूसी का–सा आवरण लपेटा और बोले, सीधी सी बात है, बरखुरदार! ..दुलत्ती झाड़ना हमारी नहीं, आदमी की फितरत है! अपने अवगुणों को अन्य जीवों पर आरोपित करना भी

आदमी ही की फितरत है।

चलचित्र के चित्रपट पर बदलते दृश्यों के समान दादा के चेहरे पर भाव बदले। मायूसी के आवरण का स्थान विचार–मुद्रा ने ले लिया और अल्पविराम के उपरान्त रहस्य–उद्घाटन मुद्रा में दादा ने आगे कहा, इस सृष्टिं में इनसान ही केवल एक ऐसा जीव है, जो अपनी ही प्रजाति की हत्या करता है! ..अच्छा! ..तुम ही बताओ! .. है, और कोई जीव जो अपनी ही प्रजाति के जीवों का शिकार करता हो?

दादा का बौधिक प्रश्न सुनकर पहले हमने अपनी बगलें झांकी! संभवतया प्रश्न का उत्तर किसी बगल में अटका पड़ा हो! किन्तु ईमानदारी से बैरंग राजनीति के समान दोनों बगलें खाली–खाली–सी थीं! ..निराश व्यक्ति को अंततः एक रामजी का ही आसरा शेष दिखलाई पड़ता है! और, हमने भी बस रामजी अब तेरा ही आसरा की तर्ज पर रामजी की ओर मुँह उठा दिया।

जारी...

हमारी दयनीय दशा देख दादा मुस्करा कर बोले, यह क्या वत्स! ..आँधी में घिरने पर तो हम बैशाख–नन्दन आसमान की ओर मुँह उठाया करते हैं! तुमने क्यों?..शायद हमारे इस गुण को भी आदमी ने अपना लिया!

मुस्कराते–मुस्कराते दादा के चेहरे पर दया भाव लक्षित होने लगे। उन्हीं भावों के साथ दादा आगे बोले, खैर, छोड़ो ये सब बातें! ..यह बताओ कि इस गरीब खाने में कैसे आना हुआ?

औपचारिकतावश हम बस इतना ही कह पाए, यों हीं बस आपकी आत्मकथा पढ़ी थी, मिलने की इच्छा जागृत हो आई।

दादा ने त्यौरी पर बल डालते हुए उग्रभाव से कहा, झूठ मत बोलो! ..आदमी और बिना प्रयोजन किसी के पास जाए! ..वह भी मेरे जैसे उपेक्षित जीव के पास! ..असंभव!

कृशन चंदर द्वारा लिखित इन महाशय की आत्मकथा हमने एक बार नहीं कई बार पड़ी थी। आदमी के मन की बात भांप लेने की उनकी क्षमता से प्रभावित भी हुए थे। मगर भेंट हुई तो आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह पाए।

आखिरकार लागलपेट की मानवीय प्रवृति पर विराम लगाते हुए लघुशंका निवारण के बाद दीर्घशंका निवारण के लिए मूल सवाल उनके सामने पटक दिया, सावन के बादलों की तरह एक सवाल हमारे जहन में अर्से से गरज–बरस रहा है, दादा! ..कृपया उसका निवारण करें!

दादा ने वक्षस्थल से आगे का सम्पूर्ण भार जमीन से तनिक ऊपर उठाया और हिलाकर अनुमति प्रदान करने की संकेत दिया। अनुमति प्राप्त होते ही हमने सवाल दाग दिया, दादा, क्या आपकी प्रजाति के जीव प्रारंभ से ही गधे थे अथवा बाद में कहलाये?

हमारा सवाल सुनते ही दादा की आँखें भर आई और ओस की बूंद–से दो आँसू आँख से निकल थुथने पर लुढ़क गये। दादा ने फिर अपने को संभाला और बोले, वत्स निष्ठां! ..हाँ! ..निष्ठां! ..और वह भी आदमी के प्रति! ..निष्ठां की पराकाष्ठा ने ही हम गधों के साथ यह विशेषण जोड़ दिया! ..उससे पहले हम केवल गधे ही थे! ..हाँ, तब तक गधे गधे न थे!

गधे गधे न थे, दादा का यह कथन–श्रवण कर हमारे मुखमंडल पर बरबस ही जिज्ञासा भाव व्याप्त हो गए। पर मन पारखी दादा ने मौन भंग किया और जिज्ञासा शान्त करने का प्रयास किया, हाँ, वत्स! हमारे एक पूर्वज की निष्ठांवान गलती का खमियाजा पूरी बिरादरी आज तक ढो रही है। मालिक के घर में चोर घुस जाने पर यदि हमारे पितामह भी कुत्ते की तरह ही सोते रहते, तो हम भी आज सम्मान की जिंदगी जीते होते!

कहते–कहते दादा की आँख–नाक दोनों से जल–धारा ऐसे प्रवाहित होने लगी, मानो पितरों के सम्मान में तर्पण संस्कार पूर्ण कर रहे हों! दादा ने लंबी साँस खींच कर जल–धारा–प्रवाह के सामने अवरोध खड़ा करने का प्रयास किया और आगे बोले, पितामह के कर्तव्य क्षेत्र में भी नहीं था, धोबी को जगाना! ..मगर निष्ठां ने उन्हें मौन नहीं रहने दिया, जैसे कि अक्सर हम रहते हैं! ..और, धोबी को जगाने की मंशा से वह जोर–जोर चिल्लाने लगे।

दादा ने आह भरी और आगे कहा, निष्ठां की सजा उन्हें मौत मिली और पूरी बिरादरी को सदा–सदा के लिए अपमान! उस निष्ठां के ही कारण पूरी बिरादरी को बेवकूफ की उपाधि से नवाजा गया! उससे पहले हम गधे भी गधे नहीं कह लाए जाते थे! ..हम भी सामान्य जीवों की ही श्रेणी में आते थे, वत्स!

लगता था कि उम्र के साथ–साथ दादा कुछ ज्यादा ही भावुक हो गये थे। अक्ल का परिचय तो आज भी उन्होंने कृशन चंदर के ही जमाने का–सा ही दिया, मगर उस तरह की शैतानी अब उनमें देखने को नहीं मिली! गमगीन माहौल को कुछ हलका करने के उद्देश्य से हमने अगला सवाल किया, दादा! तुम्हारी

बुद्धिमत्ता के किस्से तो आज भी चर्चित हैं। तुम्हारे जैसे जहीन जीव को तो देश का नेतृत्व संभालना चाहिए। तुम राजनीति में क्यों नहीं आ जाते? वैसे भी राजनीति में तुम्हारी बिरादरी वालों की संख्या कुछ कम नहीं है। कई तो सत्ता तक पहुंच गये हैं!

जारी...

सवाल सुन दादा इस बार पुनः मुस्करा दिए, गलत! एक भी तो नहीं! दादा की थूथड़ी पर अचानक ही चिंतन की रेखाएं उभर आई और फिर विचार की मुद्रा में बोले, अच्छा! ..चलो एक–आधे का नाम तो बताओ?

दादा ने फिर लंबी सांस खींची और गंभीर हो कर कर बोले, बरखुरदार! निष्ठांवान, ईमानदार, मेहनती, संतोषी, निर्विकारी जीव का भला राजनीति में क्या काम? अगर किसी ने हिम्मत की भी तो ऐसे जीव को टिकने कहाँ दिया!

दादा के जवाब पर अप्रत्यक्ष असहमति व्यक्त करते हुए हमने अगला सवाल किया, दादा! गधे पंजीरी खा रहे हैं! फिर यह कहावत क्यों?

सवाल सुन कर इस बार न तो दादा की आँख में आँसू थे और न ही थूथड़ी पर मुस्कान की लकीरें। इस बार उनकी आँखों में क्रोध की लाल–लाल लकीरें जरूर थीं।

थूथड़ी अगले पैरों से रगड़ते हुए दादा बोले, गलत! ..यह भी बिलकुल गलत! ..गधे नहीं, कुत्ते दूध–मलाई खा रहे हैं!

अफसोस की मुद्रा में दादा ने आगे कहा, अरे, बरखुरदार! गरदन झुका ईमानदारी से काम में लगे

रहने वालों के भाग्य में पंजीरी कहां?

मगर कहावत तो यही है, दादा! हमने दादा को कुरेदने की मानवीय चेष्टा की!

यह कहावत गधों के खिलाफ साजिश है और इसके पीछे उसी आदमी और कुत्ते का दिमाग है, जिनके कारण गधा बेवकूफी का पर्यायवाची बना! इसके पीछे भी मंशा वही, बेईमानी की पंजीरी कोई खाए और बदनाम कोई और!

मगर दादा कुत्ता क्यों? ..कुत्ता भी तो वफादार जीवों की श्रेणी में आता है। हमने अगला सवाल उछाला।

थूथड़ी पर नसीहत के भाव उतारते हुए दादा बोले, निष्ठां व चापलूसी में अंतर करना सीखो, बरखुरदार! .. चापलूस कभी निष्ठांवान नहीं हो सकता! ..कुत्ता निष्ठांवान नहीं चापलूस हैं! ..जिसने भी टुकड़ा डाल दिया उसी के आगे दुम हिला दी! ..उसी के तलवे चाट लिये!

क्षणिक मौन के पश्चात दादा की नसीहत का टेप पुनः बजने लगा, ..हमने कभी किसी के तलवे नहीं चाटे, दुम नहीं हिलाई! ..दिन भर मेहनत की और रात को सूखी घास चबा कर ही संतोष कर लिया!

दादा की थूथड़ी पर संताप और आश्चर्य के भाव एक साथ उतर आए थे। उन्हीं भावों का बोझा लिए दादा आगे बोले, ..आदमियों की दुनियाँ में चापलूस ही पंजीरी खा रहे हैं और हमारे जैसे चरित्रवान, गधे कहाँ लाए जा रहे हैं! ..इतना भी होता तो भी गनीमत थी! ..मगर, बरखुरदार! ..खा वें रहे हैं, वाउचर हमारे जैसों के नाम से भरे जा रहे हैं! ..हमारी नहीं कुत्तों की संस्कृति अपनाई है, तुम लोगों ने!

पंजीरी के अर्थशास्त्र का खुलासा कर क्षणभर के लिए दादा पुनः मौन हो गए और फिर धीरे से बोले, मिल गये न सभी सवालों के जवाब! ..बरखुरदार! अब जाओ, मुझे आराम करने दो।

हमारी भी लघु व दीर्घ समस्त शंकाओं का समाधान हो चुका था। मगर इस बार कृशन चंदर के उस प्रिय गधे के प्रति हमारी श्रद्धा की धारा इतने ज्यादा वेग से उमड़ी की वह सभी बांध तोड़ने के लिये आतुर थी। इस बार आदमियत के कारण नहीं, अपितु पूर्ण समर्पण भाव के साथ दादा के चरणों में गिर पड़े और बोले दादा तुम्हारी सेवा अब हम करेंगे।

आँखें बंद करते–करते दादा बोले, बेवकूफ न बन! ..आदमी है, आदमी ही रह! ..गधे का बच्चा मत बन! ..गधे का बच्चा बनेगा तो सूखी घास में ही गुजारा करना पड़ेगा!

❖❖❖

संपर्क : 08860423256

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर कवियित्री सम्मेलन

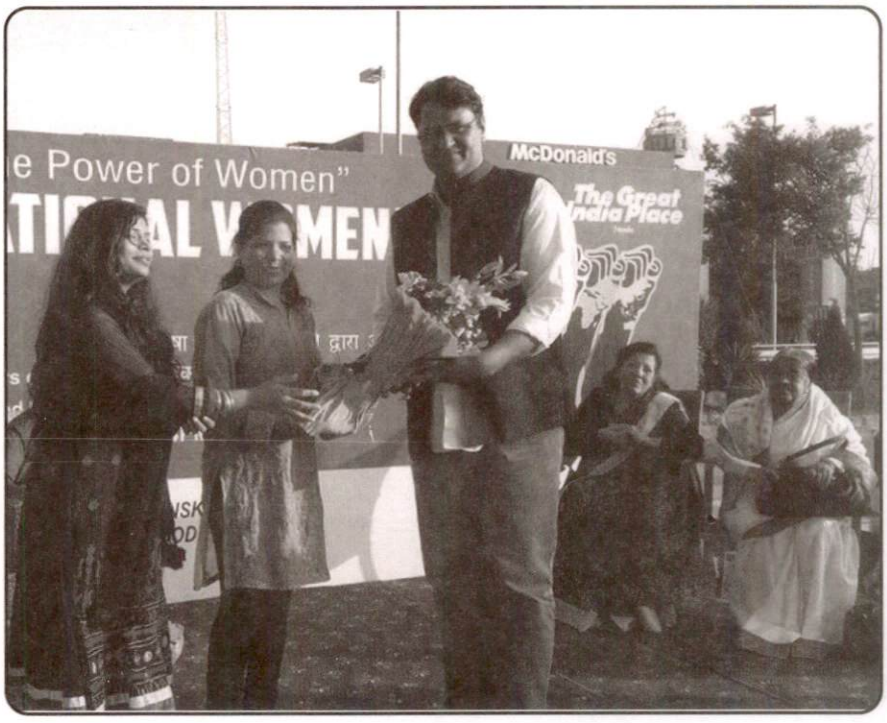

भाषा सहोदरी–हिन्दी द्वारा 8 मार्च, 2014 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष पर नोएडा सेक्टर 28 ए के जी आईपी माल में एक शानदार 'कवियित्री सम्मेलन' का आयोजन किया गया। कवियित्री सम्मेलन का उद्घाटन जी आईपी माल के महाप्रबंधक श्री आशीष शर्मा ने किया। इस सम्मेलन में देश की जानी मानी कवियित्रियों ने भाग लिया। श्रीमती सरोजनी प्रीतम और श्रीमती कनुप्रिया के अतिरिक्त इस अवसर पर आज के दौर की जानी मानी कवियित्री श्रीमती कुसुम प्रबल, श्रीमती नीलम मेंदीरत्ता, श्रीमती विजयलक्ष्मी, श्रीमती नीलू पाटनी 'नीलपरी', श्रीमती अंजु चौधरी, श्रीमती शशि श्रीवास्तव एवं सुश्री जान्हवी सुमन जी ने काव्य पाठ कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया। अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर मैराथन दौड़ में मेडल प्राप्त करने वाली सुश्री सुनीता गोदरा, जानी मानी नृत्यांगना सुश्री रानी खानम, शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में नाम रोशन करने वाली श्रीमती अनुराधा अगत्से, विकलांगता और समाज कल्याण के क्षेत्र में योगदान करने वाली सुश्री आभा खेत्रपाल, ज्योतिष विज्ञान में दक्षता हासिल करने वाली श्रीमती दीपिका शर्मा तथा शहरी यातायात में विशेषज्ञता और योगदान के लिए सुश्री रजनी गाँधी को सम्मानित किया गया। भाषा सहोदरी–हिन्दी के इस कार्यक्रम का संचालन जानी मानी कवियित्री और भाषा सहोदरी की मुख्य कर्त्ताधर्त्ता सुश्री ज्ञानेश्वरी 'सखी' सिंह ने किया। दिल्ली के लक्ष्मीनगर विधान सभा क्षेत्र से विधायक श्री विनोद कुमार 'बिन्नी' इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। इस अवसर पर भाषा सहोदरी–हिन्दी के अन्य पदाधिकारी–श्री जयकान्त मिश्र, श्री शिवकुमार बिलग्रामी, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री भीम भारत भूषण, सुश्री दुर्गेश्वरी सिंह, सुश्री सुभदा बाजपेयी, दीपक शुक्ला, उदय प्रताप द्विवेदी तथा सौरभ मिश्रा इत्यादि उपस्थित थे।

प्रस्तुति : ज्ञानेश्वरी 'सखी' सिंह

गुलों में रंग जो न थे...

– शिवकुमार बिलग्रामी

गुलों में रंग जो न थे, वो रंग भी दिखा गई
हयात कैसे – कैसे गुल, हयात में खिला गई

तड़प, कराह, बेबसी, में कट गई है ज़िन्दगी
मैं हँस सका न आज तक, ये किस तरह रुला गई

सियाह रात जिस तरह, सफ़ेद बर्फ़ में दिखे
उसी तरह से ज़िन्दगी, मुझे भी 'सच' दिखा गई

कुसूरवार कम न है, ये धूप भी तेरी फ़लक
अकेले रात ही नहीं, ये बिजलियाँ गिरा गई

मेरे ही साथ क्यों हुए हैं हादसे ये बार–बार
कि हर दफ़ा हवा मेरे, चिराग़ को बुझा गई

किसी भी जंग से मुझे, मिली ख़ुशी न आज तक
किसी की हार जीत हो, मुझे सदा रुला गई

मुराद नामुराद की, जो पूरी हो तो किस तरह
ये वो मज़ार है जो ख़ुद, फक़ीर ही को खा गई

तेरी दवा से फ़ायदा, तो ख़ूब है मुझे मगर
इलाज़ की अदा तेरी, मरज़ मेरा बढ़ा गई

अजल! तेरा मैं शुक्रिया, अदा करूँ तो किस तरह
गुलाम था हयात का, नजात तू दिला गई

❖❖❖

सृजन-स्मरण

नागार्जुन

(जन्म : 30 जून, 1911; निधन : 5 नवम्बर, 1998)

सपने में भी सच न बोलना, वर्ना पकड़े जाओगे
भैया लखनऊ–दिल्ली पहुँचो, मेवा–मिसरी पाओगे!
माल मिलेगा रेत सको यदि गला मजूर–किसानों का,
हम मर–भुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का।

– नागार्जुन

सृजन-स्मरण

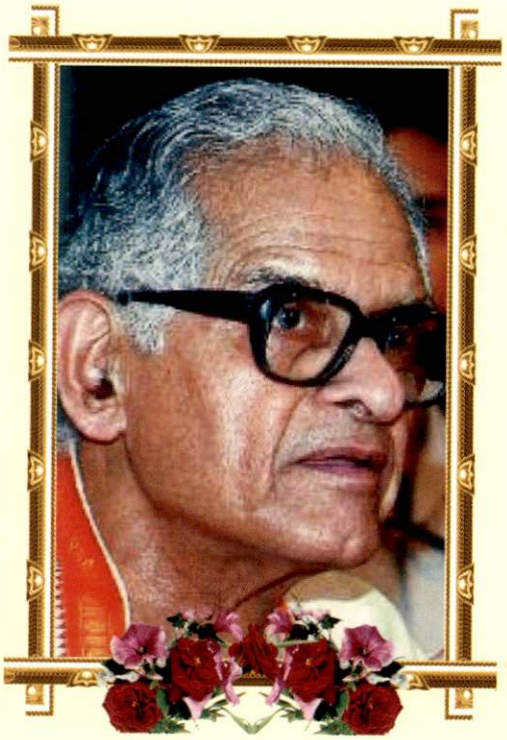

विष्णु कान्त शास्त्री

(जन्म : 02 मई, 1929; निधन : 17 अप्रैल, 2005)

मेरा कण–कण, मेरा क्षण–क्षण
अब मेरा अपना न रहा प्रिय !
समा गये हो ज्यों तुम मुझमें
अब सपना, सपना न रहा प्रिय!
आँखों में आँसू भर आते
किन्तु हृदय बेसुध गाता है।
तुमको क्या जादू आता है?

– विष्णु कान्त शास्त्री